इकाई 3 अनुवाद की चुनौतियाँ

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 अनुवाद की चुनौतियाँ : अर्थ एवं स्वरूप

3.3 भाषा : सरंचनावादी तथा उत्तर–सरंचनावादी अवधारणा

3.4 अनुवाद की चुनौतियाँ : विविध स्तर

- 3.4.1 विषय–वस्तु के स्तर पर
- 3.4.2 सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश के स्तर पर
- 3.4.3 अनुवाद में मूलनिष्ठ बनाम ईमानदार अनुवाद का प्रश्न
- 3.4.4 अभिव्यक्ति के स्तर पर
- 3.4.5 शैली के स्तर पर

3.5 सारांश

3.6 अभ्यास के लिए प्रश्न

3.7 उपयोगी पुस्तकें

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे :

- अनुवाद की चुनौतियों से क्या अभिप्राय है,
- अनुवाद की चुनौतियों के विभिन्न स्तर कौन–कौन से हैं,
- अनुवादक को किस प्रकार इन चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।
- एक अच्छे अनुवादक से क्या–क्या अपेक्षाएं की जाती हैं।

3.1 प्रस्तावना

अनुवाद कर्म के इतिहास में अनवाद की चुनौतियों की चर्चा भी उतनी ही पुरानी और उल्लेखनीय है। अनुवाद करते समय सबसे पहले अनुवादक के सामने अनुवाद करने का उद्देश्य होता है। अर्थात किसी भाषा विशेष में लिखे गए पाठ को किसी अन्य भाषा में ले जाना ताकि लक्ष्य भाषा का समाज उस निश्चित पाठ अथवा विचार से परिचित हो सके।

अनुवाद का भारतीय तथा पाश्चात्य इतिहास देखें तो यह पता चलता है कि धार्मिक और सर्जनात्मक साहित्य ने ही अनुवादकों को अनुवाद करने के लिए प्रेरित किया। भारतीय संदर्भ में रामकथा, वैदिक साहित्य, श्रीमदभागवत आदि और पाश्चात्य संदर्भ में बाइबिल के अनुवाद के इतिहास, परंपरा और इनके अनेक अनुवादों को संदर्भ हेतु देखा जा सकता है। जितना लंबा इतिहास अनुवाद का है लगभग उतने ही लंबे समय

से यह बहस भी चली आ रही है कि अनुवाद संभव है या नहीं। और इसी बहस के साथ ही सदियों से अनुवाद कार्य हो रहे हैं और मानव सभ्यताएँ विश्व के इतिहास और ज्ञान से लाभान्वित भी हो रही हैं।

3.2 अनुवाद की चुनौतियाँ : अर्थ एवं स्वरूप

अनुवाद कार्य को लेकर विभिन्न अनुवादक व अनुवाद चिंतक अपनी राय व्यक्त करते रहे हैं। सर्जनात्मक साहित्य विशेष तौर पर कविता के अनुवाद के संदर्भ में तो अनुवाद को लगभग असंभव कार्य माना जाता रहा है। किंतु इन सब धारणाओं और पूर्वाग्रहों के बीच भी सदियों से अनुवाद कार्य संभव होते रहे हैं। अनुवाद में उपलब्ध भारतीय तथा वैश्विक साहित्य इसके प्रमाण हैं।

किंतु जहां तक अनुवाद की चुनौतियों की बात है तो यह सही है कि अनुवाद का काम एक बेहद चुनौतीपूर्ण कार्य है। विभिन्न अनुवाद चिंतकों ने इस कार्य के लिए विभिन्न उपमाएं दी हैं। अनुवाद को परकाया प्रवेश, पुनःसृजन, नवलेखन, छायानुवाद आदि ऐसे न जाने कितने उपमानों से पुकारा जाता रहा है। अनुवाद कार्य को परकाया प्रवेश कहा गया तथा अनुवाद के प्रकारों में भावानुवाद, छायानुवाद आदि को स्वीकृति मिली। अनुवाद के लिए प्रयुक्त ये सभी शब्द अनुवाद कार्य की जटिलता की ओर संकेत करते हैं।

अनुवाद की चुनौतियों से तात्पर्य अनुवाद के दौरान अनुवादक के सामने आने वाली समस्याओं से है। बाहरी तौर पर यह लग सकता है कि अनुवाद में केवल एक भाषा के पाठ को दूसरी भाषा में अंतरित कर देना है। कहा जा सकता है कि एक भाषा के समतुल्यों की तलाश कर यह काम किया जा सकता है। किंतु अनुवादक ही बेहतर जानते हैं कि यह कार्य इतना सरल नहीं है। प्रत्येक पाठ की प्रकृति, उसकी भाषा, पाठ की संस्कृति, कथ्य और शैली सभी के प्रति संवेदनशील होकर ही बेहतर अनुवाद संभव है। अनुवाद करते समय अनुवादक के समक्ष अनेक चुनौतियाँ होती हैं जिनका सामना करते हुए उन्हें मूलभाषा और लक्ष्यभाषा दोनों के प्रति न्याय करना होता है और पाठ की मूल आत्मा को बचाना होता है।

अनुवाद में अनुवादक से केवल दो भाषाओं के ज्ञान की अपेक्षा ही नहीं होती अपितु इन दो भाषाओं के साथ–साथ अनुवादक को दो संस्कृतियों, दो संदर्भों तथा दो विभिन्न परिवेशों की भी जानकारी होना अपेक्षित है। इस सांस्कृतिक विविधता के अंतर्गत वे सभी सभ्यतागत तथा सांस्कृतिक विकास के तत्व आ जाते हैं जिनके आधार पर ये दोनों संस्कृतियाँ भिन्न हैं। इसी भाषायी और सांस्कृतिक विविधता के कारण विभिन्न संस्कृतियों के बीच अनुवादक के समक्ष अननुवाद्यता की समस्या आती है। ऐसी स्थिति में अनुवादक को अनुवाद कर्म के दौरान कदम–कदम पर विभिन्न प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

3.3 भाषा : सरंचनावादी तथा उत्तर–सरंचनावादी अवधारणा

मोना बेकर द्वारा संपादित रुटलेज इनसाइक्लोपीडिया ऑफ ट्रांसलेशन स्टडीज़ में भाषा के संबंध में उल्लिखित है कि *Language is typically seen as comprising two layers, a surface and a deep structure. Ideas and meaning are generated at the deeper layer and can be represented by a variety of surface linguistic structures. (pg. 301*)

स्पष्ट है कि भाषा की भीतरी सतह सांस्कृतिक तत्वों को संजोए होती है और ऊपरी सतह मूल संदेश की वाहक होती है। भाषा के संरचनावादी चिंतक सस्यूर के अनुसार किसी भी भाषा के निर्माण में दो तत्व अत्यंत महत्वपूर्ण हैं – संकेतक (signifier) और संकेतित (signified). संकेतक वास्तव में वह प्रतीक है जो किसी संकेत को भाषा में प्रस्तुत करता है। दूसरे शब्दों में कहें तो निश्चित संकेतक से निश्चित संकेतित वस्तु या भाव आदि का ज्ञान होता है। संरचनावादी भाषा विज्ञान के अनुसार भाषा का लिखित रूप अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि भाषा के लिखित रूप की सहायता से ही अर्थ की सही अभिव्यक्ति हो सकती है। इसके अनुसार एक संकेतक के माध्यम से एक संकेतित का आभास होना उसका सीमित होना है। इस प्रकार प्रत्येक भाषा के संकेतित तत्व को उनके संकेतकों के माध्यम से अभिव्यक्त किया जा सकता है। भाषा की यह संरचनावादी अवधारणा लिखित भाषा को अधिक महत्व देती है। और परोक्ष रूप से मूल के महत्व को स्थापित करती है जिसमें एक संकेतक के लिए एक संकेतित है। इसे और अधिक स्पष्ट रूप से कहें तो किसी शब्द के ज़ेहन में आने के साथ ही उसका एक तय और निश्चित अर्थ ही ज़ेहन में आता है और साथ ही उसका विलोम भी। और इसके दूरस्थ प्रभाव से लिखित भाषा के साथ उसके तय अर्थ ही स्थापित नहीं होते अपितु लिखित इतिहास, लिखित तथ्य और सत्य की भी स्थापना हो जाती है। भाषा को इस तरह की सीमा में बाँधने से वह एकांगी हो जाती है और उसकी अनेकार्थता भी प्रभावित होती है। वहीं उत्तर संरचनावादी भाषा विज्ञान (जिसका प्रवर्तक जॉक देरिदा को माना जाता है) के अनुसार संकेतक और संकेतित की निश्चित भूमिका भाषा का मानक नहीं है। भाषा के सिग्निफायर यानी संकेतक को केवल सिग्निफायड यानी संकेतित अर्थ तक सीमित करना उसके विभिन्न पाठ होने के रास्ते में बाधक है चूंकि एक संकेतक से अनेक अर्थों का भान भी हो सकता है। यही अनेकार्थता पाठ को बहुआयामी बनाती है।

(What Derrida rejects is binary structure, and this goes beyond the simple opposition signifier/signified. This structure in fact underpins the history of philosophy, which conceives the world in terms of a system of oppositions proliferating without end: logos/pathos, soul/body, self/other, good/evil, culture/nature, man/woman, understanding/perception, inside/outside, memory/oblivion, speech/writing, day/night, etc.) (http://www.signosemio.com/derrida/deconstruction-and-differance.asp, retrieved on 28 November 2019)

पाठ के बहुआयामी हो जाने मात्र से ही अनुवादक की समस्या कई गुना बढ़ जाती है। भाषा का उत्तर संरचनावादी पाठ उत्तर औपनिवेशिक चिंतन में केंद्रीय भूमिका निभाता है जहां पाठ लेखक–पाठक की तय रेखांकित सीमाओं (binary) से मुक्त हो अनेक अंतर्पाठों की मांग करता है।

3.4 अनुवाद की चुनौतियाँ : विविध स्तर

रचनाकर्म मनुष्य के जीवन के बेहद महत्वपूर्ण क्षणों में होता है। रचनाकार जब किसी रचना को आकार देते हैं तो उनके समक्ष उनका अपना जीवन, उनका समाज, उनकी संस्कृति, उनके अपनों का जिया हुआ अनुभव और अपनी समझ आदि सब आकर खड़े हो जाते हैं और उन्हीं सब के मेल से एक खूबसूरत रचना आकार ले पाती है। ऐसी अनूठी रचना को अनुवाद द्वारा किसी दूसरी भाषा के सहृदय वर्ग तक उतनी ही

खूबसूरती से पंहुचा पाना वास्तव में एक बेहद जटिल कार्य है। अनुवाद के दौरान अनुवादिका/अनुवादक को भी लेखिका/लेखक की मनःस्थिति तक पंहुचना होता है और देरिदा के अनुसार कहें तो भाषा की इकाई केवल लिखित भाषा को नहीं माना जा सकता। इसके साथ–साथ लेखक के अनकहे को भी समझने की आवश्यकता होती है, तब कहीं जाकर एक बेहतर अनुवाद सामने आ पाता है। भाषा और पाठ के विकेंद्रीकरण से पाठ न केवल बहुआयामी हो जाता है अपितु पाठक के समक्ष भी उसके कई पाठ खुलने लगते हैं। पाठ लेखक से मुक्त हो जाता है और इस तरह ओरिजिनल अर्थात मूल की बायनरी से मुक्त हो जाता है। (He has elaborated a theory of deconstruction (of discourse, and therefore of the world) that challenges the idea of a frozen structure and advances the notion that there is no structure or centre, no univocal meaning. The notion of a direct relationship between signifier and signified is no longer tenable, and instead we have infinite shifts in meaning relayed from one signifier to another. http://www.signosemio.com/derrida/deconstruction-and-differance.asp, retrieved on 28 November 2019)

इसी प्रक्रिया में अनुवादक के समक्ष विभिन्न समस्याएँ आती हैं जिन्हें हम अनुवाद की चुनौतियाँ कहते हैं। अनुवाद की चुनौतियों के विभिन्न स्तर हो सकते हैं, जैसे :

3.4.1 विषय–वस्तु के स्तर पर

जब हम विषय–वस्तु की बात करते हैं तो उसके दायरे में साहित्यिक और गैर साहित्यिक सभी कुछ आ जाता है। जैसे – सर्जनात्मक साहित्य, कार्यालयी साहित्य, विधि साहित्य, विज्ञान सम्बन्धी साहित्य आदि। ऐसे मौलिक साहित्य के अनुवाद के लिए अनुवादक को भाषा के साथ विषय का भी अच्छा ज्ञान होना चाहिए। साहित्य के संदर्भ में बात करें तो विषय की विविधता कई प्रकार की हो सकती है। अस्मिता विमर्श के साहित्य में आने से अस्मितावादी साहित्य की शुरुआत हुई। हर अस्मिता के भोगे हुए अपने अनुभव होते हैं। इन अनुभवों के मौलिक लेखन ने भाषा को कई नए शब्द दिए है किंतु इनके अनुवाद के लिए लक्ष्य भाषा में उचित पर्याय उपलब्ध न होने की स्थिति में अनुवादिका/अनुवादक के सामने एक विकट समस्या खडी हो जाती है। यह समस्या भी दो प्रकार की है – एक, लक्ष्य भाषा में उचित पर्याय न मिल पाने से अनुवाद संभव नहीं हो पाता है; दो, यदि पर्याय मिल भी जाएं तो अनुवाद में एकरूपीकरण की समस्या पैदा हो जाती है जिससे ऐसा अनुवाद सामने आ पाता है जो भाषा का मानक रूप है जबकि अस्मिता केंद्रित साहित्य की विशेषता उसकी अन्य मुख्य धारा के साहित्य से विषमता है। ऐसे में अनुवादिका/अनुवादक अननुवाद्यता की विकट समस्या से जूझते रहते हैं। उदाहरण स्वरूप तमिल लेखिका बामा का *संगति,* बांग्ला रचनाकार बेबी हालदार का *आलो आंधारि,* फणीश्वर नाथ रेणु का मैला आंचल, श्रीलाल शुक्ल का राग दरबारी, कवयित्री निर्मला पुतुल का *नगाडे की तरह बजते हैं शब्द*, राकेश कुमार सिंह का *पठार पर कोहरा* आदि इसी तरह की रचनाएं हैं। इसी तरह कृष्णा सोबती का *जिंदगीनामा* और *मित्रो मरजानी* शुद्ध पंजाबी का पुट लिए हिंदी रचना है जिनके अनुवाद में अनुवादक को कई शब्दों और अभिव्यक्तियों में अननुवाद्यता की समस्या से जूझना पडता है। इनके विषय ठीक अपने समाज और सामाजिक विसंगतियों से निकलकर आते है। जैसे रेणु के *मैला आंचल* में *चार आना लबडी ताड़ी, रोक साला मोटर गाड़ी* आता है तब शब्दों के साथ आवश्यक यह भी है कि रचना की मूल वस्तु को समझा जाए। ऐसे अनुवाद में भाषा की संरचनावादी

अवधारणा (जिसके अनुसार संकेतक के साथ उसका तय संकेतित यानी अर्थ ही नहीं खड़ा होता अपितु उसका विलोम भी खड़ा हो जाता है) से काम नहीं चलता। अर्थ के विकेंद्रीकरण से मुख्य धारा से अलग अस्मितावादी विमर्श और साहित्य को समझने में न केवल आसानी होती है अपितु उनके अनुवाद को लेकर भी एक नई दृष्टि मिलती है। देरिदा की दृष्टि से देखें तो अनुवाद के लिए भाषा की संरचनावादी अवधारणा के साथ उत्तर संरचनावादी अवधारणा भी उतनी ही महत्वपूर्ण है क्योंकि एक ओर जहां संरचनावादी अवधारणा अनुवाद करने के लिए भाषा के तय पर्याय प्रस्तुत करती है वहीं उत्तर संरचनावादी अवधारणा नए सत्यों, नई अवधारणाओं के सही और ज़रूरी पाठ के लिए भी मार्ग बनाती है। *रुटलेज इनसाइक्लोपीडिया ऑफ ट्रांसलेशन स्टडीज़ के अनुसार* :

The limit of any language is both a boundary and a structural opening to its outside. Just as this structure makes translation between languages possible, it also makes possible new translations of identities such as race, gender, culture or ethnicity. (pg. 75)

उदाहरणस्वरूप कृष्णा सोबती के उपन्यास *मित्रो मरजानी* की चर्चा करें जिसका अंग्रेजी अनुवाद *To hell with you Mitro* के नाम से हुआ, अनुवादिका ने न केवल तय भाषा और उपलब्ध अर्थों के माध्यम से उसका अनुवाद किया अपितु स्त्री होने के नाते अपने अनुभवों के आधार पर शब्दों को स्त्री अस्मिता के धरातल पर समझते हुए उसके अनुवाद में अनुवादकीय समझ का भी प्रयोग किया। वहीं गायत्री चक्रवर्ती स्पीवाक ने महाश्वेता देवी की कहानी *स्तनदायिनी* का अनुवाद केवल उसका भावगत अनुवाद करते हुए नहीं किया बल्कि उसका शाब्दिक अनुवाद करते हुए और पूरी अनुवादकीय छूट लेते हुए स्त्री अस्मिता और लेखिका द्वारा उठाए गए मुद्दे को उसके मर्म तक समझते हुए उसका अनुवाद *The Breast Giver* के रूप में किया जिसे अनुवाद की दृष्टि से एक खराब या शब्दानुवाद भी कहा जा सकता है। गायत्री स्पीवाक इस शीर्षक का शाब्दिक अनुवाद करके शीर्षक के मूल तत्व तक पँहुचना चाहती हैं और यह बताना चाहती हैं कि भारतीय समाज में स्त्री के शारीरिक–मानसिक शोषण की लंबी परंपरा रही है जिसमें स्त्री देह हमेशा शोषित होती रही है। *स्तनदायिनी* शीर्षक का अनुवाद *The Breast Giver* करने के पीछे उनका उद्देश्य भारतीय समाज में और उसके भी भीतर दोहरी मार झेल रही आदिवासी स्त्रियों के शोषण को उजागर करना है।

3.4.2 सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश के स्तर पर

1990 के आसपास अनुवाद में आए सांस्कृतिक मोड़ ने अनुवाद के प्रति पूरी दृष्टि ही बदलकर रख दी। अब अनुवाद केवल भाषायी गतिविधि न रहकर एक सांस्कृतिक गतिविधि हो गया जिसमें अनुवाद की केंद्रीय इकाई भाषा से बदलकर संस्कृति हो गई। अनुवाद के प्रति इस बदलते दृष्टिकोण की ओर संकेत करते हुए लेफेवेयर और बेसनेट अपनी संपादित पुस्तक *Translator, History and Culture* में लिखते हैं –

Now the questions have been changed. The object of study has been redefined; what is studied is text embedded within its network of both source and target cultural signs.(pg 11-12)

अपनी इसी बात पर बल देती हुई सूसन बेसनेट अपने निबंध *Culture and Translation* में लिखती हैं –

What is obvious now, with hindsight, is that the cultural turn was a massive intellectual phenomenon, and was by no means only happening in translation studies. Across the humanities generally, cultural questions were assuming importance.(pg 15)

स्पष्ट है कि यह सांस्कृतिक मोड़ केवल अनुवाद में ही नहीं, अपितु मानिविकी से संबंधित सभी विषयों, जैसे – भाषाविज्ञान, मानवविज्ञान, इतिहास, साहित्य, भूगोल आदि सभी में देखा गया। विभिन्न विषयों में सांस्कृतिक अध्ययन की इस लहर ने साहित्य और मानविकी के विभिन्न विषयों को देखने का नज़रिया ही बदलकर रख दिया। इस बदले नज़रिये ने साहित्य और अनुवाद के क्षेत्र में संस्कृति को मूल तत्व के रूप में स्थापित किया। परिणामस्वरूप, एकरेखीय समझे जाने वाले अनुवाद अध्ययन में महत्वपूर्ण बदलाव देखे गए। अनुवाद की केंद्रीय इकाई *भाषा* के स्थान पर *संस्कृति* हो जाने से और सांस्कृतिक अध्ययन (Cultural Studies) की ओर अत्यधिक झुकाव ने अनुवाद में अस्मितावादी साहित्य – जेंडर, जाति, अल्पसंख्यक, विचारधारा आधारित साहित्य के अध्ययन को प्रश्रय दिया। फलस्वरूप अनुवाद की चुनौतियों के स्वरूप में भी बदलाव आया।

चूंकि अनुवाद की मूल इकाई *संस्कृति* हो गई, इसलिए अनुवाद करते समय आने वाली कठिनाइयों या दुविधाओं को भी केवल भाषागत दृष्टि से देखा जाना अपर्याप्त लगने लगा। अब किसी पाठ का अनुवाद करते समय केवल यह देखा जाना आवश्यक नहीं है कि उसके अनुवाद हेतु लक्ष्य भाषा में निकटतम समतुल्य अथवा गत्यात्मक समतुल्य (dynamic equivalence) उपलब्ध है या नहीं जैसा कि नायडा अपने अनुवाद के सिद्धांत में कहते हैं। अपितु अब यह भी देखा जाना ज़रूरी है कि इस प्रक्रिया में कहीं मूल भाषा की संस्कृति लुप्त होकर न रह जाए।

कोई भी साहित्यिक रचना अपने परिवेश में रची–गुँथी होती है। उसका समाज, उसकी संस्कृति उस पर इस कदर हावी होती है कि उसे पढ़ने मात्र से आप उस समाज के रहन–सहन और चिंतन पद्वति का अनुमान लगा सकते हैं। यू.आर. अनन्तमूर्ति का *संस्कार* हो या तकषि शिवशंकर पिल्लै का *चेम्मीन*, बामा का *संगति* हो या फिर शरतचंद्र चट्टोपाध्याय का *परिणीता* या फिर धर्मवीर भारती का *गुनाहों का देवता* सभी रचनाएं हमें अपने समय, परिवेश, चिंतन पद्वति से अनजाने ही अवगत करवाती चलती हैं। हम उनके माध्यम से उस समय और समाज को समझ रहे होते हैं। उन रचनाओं को जब हम उस समय और समाज के ढांचे से बाहर रखकर अनुवाद करते हैं तो कई किस्म की समस्याएं आती हैं। जैसे – कुछ ऐसे शब्दों से परिचय होता है जो उस समय चलन में थे किंतु अब या तो उनका स्वरूप और अर्थ बदल गया है या फिर वे प्रयोग से बाहर हो गए हैं। अनुवादक अनुवाद से पूर्व पाठ विश्लेषण के दौरान इन शब्दों और प्रयोगों को रेखांकित करते चलते हैं और अनुवाद की अपनी रणनीति तय करते चलते हैं। इस तय रणनीति के माध्यम से अनुवादक की रचना के प्रति, अनुवाद के प्रति और किसी निश्चित विचार या अस्मिता के प्रति समझ भी प्रकट होती है। ऐसी स्थिति में या तो वे इनके स्थान पर प्रयुक्त हो रहे नए शब्दों का प्रयोग करते हैं और कोष्ठक में या फुटनोट में उसकी व्याख्या करते हैं या फिर मूल भाषा के शब्दों का ही लिप्यंतरण करते हुए टिप्पणी में उसे स्पष्ट कर देते हैं।

अनुवादक/अनुवादिका के सामने आ रहे ये शब्द उनके लिए किस प्रकार की चुनौती लेकर आते हैं और इनका समाधान वे किस तरह तलाशते हैं, इसे देखे जाने की आवश्यकता है। सामाजिक–सांस्कृतिक स्तर की अननुवाद्यता में समस्या उत्पन्न करने वाले शब्द वे होंगे जिनकी अवधारणा स्रोत भाषा में तो होगी, लेकिन लक्ष्यभाषा में नहीं। जैसे – विभिन्न अनूदित पाठों में हमने अनुवादिकाओ/अनुवादकों को मूल शब्द के निकटतम पर्याय के प्रयोग के माध्यम से हल निकालते देखा है जो अनूदित पाठ के पाठक तक पाठ को संप्रेषित करने के लिए उचित भी है। प्रसिद्ध अनुवाद चिंतक वॉल्टर बेंजामिन अपने निबंध *Task of the Translator* में लिखते है कि अनुवाद उनके लिए नहीं किया जाता है जो मूल पाठ को समझ सकते हैं। लेकिन इसके साथ यह भी उल्लेखनीय है कि अनुवाद के उत्तर संरचनावादी अथवा उत्तर उपनिवेशवादी चिंतक अनुवाद को अलग नज़र से देखते हैं। अनुवाद कर्म में अनुवाद की समस्या केवल भाषिक या सांस्कृतिक समस्या नहीं है अपितु वह अनुवादक की अपनी वैचारिकी, अपनी सैद्धांतिकी की समस्या भी है।

3.4.3 अनुवाद में मूलनिष्ठ बनाम ईमानदार अनुवाद का प्रश्न

अनुवाद के लिए कहा जाता है कि वही अनुवाद सबसे बेहतर है जिसे पढ़ते हुए मूल का सा आस्वाद हो। यानी अनुवाद पढ़ते समय पाठक अनूदित पाठ के साथ हिचकोले न खाएं। दूसरे शब्दों में कहें तो अनुवाद पढ़ते हुए पता ही न चले कि अमुक पाठ अनुवाद है। अनुवादक ऐसे पाठों में अदृश्य रहकर अपनी भूमिका निभाते हैं। आदर्श अनुवाद की स्थिति में यह बात काफी हद तक सही भी लगती है। लेकिन अनुवाद के उत्तर उपनिवेशवादी चिंतक लॉरेंस वेनुटी अनुवादक की दृश्यता की वकालत करते हैं। अपनी पुस्तक *The Translator's Invisibility : A History of Translation* में वे अमेरिका में 17वीं सदी से हो रहे अनुवाद कर्म के आधार पर किए गए अध्ययन में स्पष्ट करते हैं कि अनुवादक का अदृश्य होना वास्तव में केवल अच्छे अनुवाद की प्रस्तुति ही नहीं है, अपितु अनुवादक के अनुवाद के दौरान किए गए विभिन्न प्रयासों को अनदेखा करना भी है। और साथ ही मूल संस्कृति के देय की अवहेलना भी है। *What is so remarkable here is that this illusory effect conceals the numerous conditions under which the translation is made, starting with the translator's crucial intervention in the foreign text The more fluent the translation, the more invisible the translator, and, presumably, the more visible the writer or meaning of the foreign text (Venuti (1995), pg 1-2).*

एंग्लो–अमेरिकी संस्कृति में अनुवाद के प्रति दोयम व्यवहार की ओर संकेत करते हुए वेनुटी लिखते हैं कि अनुवादक को अदृश्य रखकर ही साहित्य जगत में अनुवादक की दोयम स्थिति को बनाए रखा जा सकता है। *The translator's invisibility is thus a weird self-annihilation, a way of conceiving and practicing translation that undoubtedly reinforces its marginal status in Anglo-American culture.* Venute (1995), pg, 8.)

वेनुटी इस स्थिति के समाधान और अनुवादक के साथ–साथ उपेक्षित और दोयम दर्जे के व्यवहार को रोकने और अनुवाद के एकरूपीकरण से बचाव के लिए अनुवादक की दृश्यता की वकालत करते हैं। अनुवादक की दृश्यता तभी संभव है जब स्रोत पाठ का अनुवाद करते समय सब कुछ का अनुवाद कर देने की ज़िद को छोड़ दिया जाए क्योंकि जब स्रोत पाठ का पूर्णतः अनुवाद कर दिया जाता है तब स्रेत पाठ और स्रोत

संस्कृति उसमें कहीं विलुप्त हो जाते हैं। स्रोत संस्कृति की विशिष्टता को बचाए रखने के लिए आवश्यक है कि अनुवादक के लिए अनुवाद की इकाई भाषा न होकर संस्कृति हो। भाषायी समतुल्य खोजकर अनुवादक न केवल गुमनामी के शिकार हो जाते हैं अपितु स्रोत संस्कृति भी पूरी तरह उल्लिखित नहीं हो पाती।

अनुवादकर्म के दौरान अनुवादकों के समक्ष विविध स्तरों पर आने वाली ये चुनौतियाँ अनुवाद की एक महत्वपूर्ण समस्या है जिसके लिए विभिन्न चिंतकों जैसे – केटफर्ड, नायडा आदि ने विभिन्न तकनीकें सुझाई हैं। नायडा का निकटतम समतुल्य का सिद्धांत इस दिशा में सबसे अधिक कारगर सिद्ध हुआ है जिसके अंतर्गत वे लक्ष्यभाषा में समतुल्य शब्द की तलाश करने पर ज़ोर देते हैं और मानते हैं कि समतुल्यों के आधार पर अनुवाद का जटिल काम अपेक्षतया आसानी से किया जा सकता है। नायडा द्वारा सुझाया गया यह सिद्धांत कई मायनों में कारगर सिद्ध होता है किंतु इस तकनीक के तहत उपनिवेशित राष्ट्र के *रोटी* शब्द को उपनिवेशक की भाषा और संस्कृति में ढालकर bread तो कहा जा सकता है लेकिन रोटी और रोटी के साथ जुड़े विभिन्न अनुभव ऐसे अनुवाद में छूट जाते हैं। यदि अनुवादिका/अनुवादक अनुवाद करते समय रोटी को रोटी या दुपट्टे को scarf कहने की जगह दुपट्टा ही कहें और साथ में उसे सामाजिक–सांस्कृतिक और पारंपरिक महत्व को भी समझाएँ तो संभव है कि अनुवाद थोड़ा कम रुचिकर हो, किंतु वह एक ईमानदार अनुवाद होगा और स्रोत पाठ की संस्कृति से एक विदेशी और अनभिज्ञ पाठक को अवगत करवाएगा।

यूं भी अस्मिता विमर्श का साहित्य जो कि स्वयं ही उत्तर औपनिवेशिक विमर्श की देन है, का अनुवाद भाषायी दृष्टिकोण से हो भी नहीं सकता। अस्मिता विमर्श का साहित्य अपने साथ अपने जिए नए अनुभवों को लेकर आता है जिन्हें इससे पहले साहित्य में स्थान नहीं मिला। अपने नितांत निजी अनुभवों से उपजा यह साहित्य भाषा की दृष्टि से भी नए शब्दों और प्रयोगों से परिचय करवाता है, जिसका अनुवाद भाषा के अनुकूलीकरण के माध्यम से हो ही नहीं सकता और यदि होता भी है तो उसके साथ और संबंधित विमर्श के साथ अन्याय होगा। अनुवाद में जेंडर विमर्श की पैरोकार और क्यूबेकियन लेखिका और अनुवादिका बारबरा गोदार्ड अनुवाद में अनुवादिका के पूर्णतः दृश्यमान होने की पुरजोर पैरवी करती हुई कहती हैं कि अनुवादिका को अनुवाद में अपनी उपस्थिति अवश्य दर्ज करवानी चाहिए। इस प्रकार वह अनुवाद की पारंपरिक छवि को बदलेंगी जिससे स्त्रियों की साहित्यिक तथा बौद्धिक उपस्थिति दृश्यमान होगी।

Godard uses the term *womanhandling* to describe feminist approaches to translation and considers that feminist translators should *flaunt* their presence and agency in the text, making themselves and their work visible, and thereby reversing in the age-old order of translators' and women's public and literary/scholarly invisibility. (Kuhiwizak, pittr and Littau, Karim ed (p-24).

अनुवाद की केंद्रीय इकाई संस्कृति हो जाने से अनुवाद करने का पूरा दृष्टिकोण ही बदल जाता है। अनुवाद में नई रणनीतियों और तकनीकों की शुरुआत होती है जिसके अंतर्गत सामाजिक–सांस्कृतिक तथा अस्मिता विशेष से संबंधित शब्दों का अनुवाद न करके उन्हें अनुवादकीय टिप्पणी के माध्यम से स्पष्ट किया जाता है।

3.4.4 अभिव्यक्ति के स्तर पर

अभिव्यक्ति से तात्पर्य है वस्तु को अभिव्यक्त करने की युक्ति। ज्ञानपरक साहित्य के संदर्भ में कहें तो चाहे वह कार्यालयी साहित्य हो, विधि साहित्य हो, वैज्ञानिक साहित्य हो या फिर समाजशास्त्रीय साहित्य हो –इन सबकी अभिव्यक्ति की अपनी एक खास प्रयुक्ति होती है। भाषा की तीन शब्द शक्तियों – अभिधा, लक्षणा, व्यंजना में से सर्जनात्मक साहित्य के संदर्भ में अभिधा को चाहे कितना भी कमतर आंका जाए किंतु ज्ञानपरक साहित्य में अभिधा शब्द शक्ति ही सर्वोचित मानी जाती है। ज्ञान की इन सभी शाखाओं में न तो रचनाकार और न ही अनुवादक किसी प्रकार की छूट ले सकते हैं। इन क्षेत्रों में अननुवाद्यता की समस्या तब आती है जब किसी नई अवधारणा से जुड़े ऐसे शब्दों का अनुवाद करना पड़े जो कि लक्ष्य भाषा की संस्कृति में उपलब्ध नहीं है। ज्ञानपरक साहित्य की विभिन्न शाखाओं में पारिभाषिक शब्दावली की संकल्पना का अपना महत्व और विशिष्ट स्थान होता है। इस प्रकार के साहित्य का अनुवाद करते समय इन पारिभाषिक शब्दावलियों में पर्याय न मिलने पर अनुवादक के समक्ष विकट समस्या इस प्रकार खडी हो जाती है कि यहाँ वे सर्जनात्मक साहित्य की तरह छूट नहीं ले सकते और उन्हें शब्द विशेष के उचित पर्याय की आवश्यकता होती है। ऐसे में वे मूल भाषा के शब्दों का लिप्यंतरण करके उन्हें अनुकूलित करके या फिर नया शब्द गढ़कर लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं।

इसी तरह स्रोतभाषा की वाक्य संरचना, शब्द चयन, लोकोक्ति–मुहावरे, परिवेश, रूप रचना आदि में भी अनुवादक को तालमेल बैठाने की आवश्यकता होती है। इसीलिए यह आवश्यक है कि अनुवादक को दो भाषाओं के ज्ञान के साथ उन दोनों भाषाओं की संस्कृतियों का पर्याप्त ज्ञान हो।

3.4.5 शैली के स्तर पर

सर्जनात्मक साहित्य के अनुवाद में यह समस्या शैली के स्तर पर भी आती है। उदाहरणस्वरूप यदि लक्ष्य भाषा की संस्कृति स्रोतभाषा की संस्कृति के किसी पाठ को एक या एकाधिक कारणों से अपनी संस्कृति में लाना तो चाहती है लेकिन शैलीगत कठिनाई के चलते उसे समस्याओं का सामना करना पड़ता है तब वे शैली की सीमाओं को तोडकर कथ्य का अनुवाद कर लेते हैं। जैसे *महाभारत* और *रामायण* आदि धार्मिक ग्रंथों के अंग्रेजी तथा अन्य विदेशी भाषाओं में हुए अनुवादों का यहां उल्लेख किया जा सकता है। कविता के अनुवाद में इस तरह की समस्या अधिक आती है जहाँ स्रोतभाषा की संस्कृति में लय, छंद, अलंकार, गति आदि के अपने तय पैमाने होते हैं। लक्ष्यभाषा के भाषायी और सांस्कृतिक ढांचे में ढालना अनुवादक के लिए बहुत बड़ी चुनौती हो जाता है। ऐसी स्थिति में रोमन जेकबसन कविता के अनुवाद को एक असंभव कार्य मानते हुए *क्रिएटिव ट्रांसपोज़िशन* यानी पुनःसृजन की सलाह देते हैं। ऐसी स्थिति में यह सवाल तो जायज़ है कि अनुवाद की सीमित परिभाषा यानी *ट्रांसलेशनप्रॉपर* की दृष्टि से वह कितना सही है।

सवाल यहाँ फिर से वही उठता है कि पाठ का अनुवाद करने के पीछे अनुवादक का उद्देश्य क्या है। यदि केवल कथ्य का अनुवाद करना है तो उसे विधा का बंधन तोड़कर भी किया जा सकता है लेकिन यदि विधागत अनुवाद करना है तो अनुवादक को चुनौती लेनी ही होगी। साहित्य और विधाओं का इतिहास बताता है कि अनुवादकों ने इस प्रकार की चुनौतियाँ ली हैं। कविता में *हाइकू, सॉनेट* आदि इसी के उदाहरण

हैं। अनुवादक को अनुवाद करने की छूट तथा स्रोत संस्कृति से केवल पाठ ही नहीं अपितु संस्कृतिगत तत्वों को लाने की समझ ही बेहतर अनुवाद उपलब्ध करवा सकती है।

3.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई में हमने जाना कि अनुवादक अनुवाद कर्म के दौरान कई स्तरों पर चुनौतियों का अनुभव करते हैं। ये चुनौतियाँ विभिन्न प्रकार की हो सकती हैं, जैसे – भाषिक स्तर पर, सामाजिक–सांस्कृतिक स्तर पर, अभिव्यक्ति तथा शैली के स्तर पर आदि। अनुवादक अनुवाद प्रक्रिया के दौरान इन सभी चुनौतियों से जूझते हैं। ऐसे में अनुवाद का उनका अपना अर्जित अनुभव तथा अनुवादक की अपनी वैचारिकता दोनों बेहद कारगर सिद्ध होते हैं। अनुवाद के दौरान आने वाली इन समस्याओं के समाधान के लिए हमें यह समझना होगा कि अनुवाद की ये चुनौतियाँ की केवल भाषागत ही नहीं है अपितु अनुवादक की उत्तर संरचनात्मक और उत्तर औपनिवेशिक दृष्टि से पाठ और अनुवाद के प्रति धारणा भी इससे उजागर होती है।

अनुवाद की केंद्रीय इकाई *संस्कृति* हो जाने से यह समस्या तथा इसके समाधान अपने नए रूप में हमारे सामने हैं जहां अनुवादक की दृश्यता के साथ–साथ अनूद्य शब्दों और स्थितियों पर विचार किया जाता है और अनुवाद के उत्तर संरचनात्मक और उत्तर औपनिवेशिक दृष्टिकोण भी उसके अनुवाद की रणनीति तय करने में सहायक होते हैं। भाषागत तथा सामाजिक–सांस्कृतिक समस्याओं के अनुवाद में अनुवादक की अपनी समझ तथा पाठ के प्रति एक खुली दृष्टि अनुवाद कार्य को संभव बनाने में सहायक हो सकती है। इस पाठ्यक्रम की अगली इकाइयों में भी हम अनुवाद के प्रति बदलते इस दृष्टिकोण को विस्तार से समझेंगे और जानेंगे कि अनुवाद को केवल प्रयोजनमूलक विषय के सीमित दायरे से बाहर निकालकर तथा उसे एक स्वतंत्र पाठ के रूप में देखे जाने से अनुवादक के समक्ष आने वाली चुनौतियों के स्वरूप में भी बदलाव आया है।

3.6 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. अनुवाद का काम एक बेहद चुनौतीपूर्ण कार्य है। (सही / गलत)
2. ज्ञानपरक साहित्य में अभिधा शब्द शक्ति ही सर्वोचित मानी जाती है।(सही / गलत)
3. अनुवाद में निकटतम समतुल्य का सिद्धांत..... की देन है। (केटफर्ड / नायडा)
4. अस्मिता विमर्श के साहित्य में आने से अस्मितावादी साहित्य की शुरुआत हुई।(सही / गलत)
5. शाब्दिक अनुवाद, अनुवाद का सबसे बेहतरीन रूप है।(सही / गलत)
6. ज्ञानपरक साहित्य की विभिन्न शाखाओं में पारिभाषिक शब्दावली की संकल्पना का अपना महत्व और विशिष्ट स्थान होता है।(सही / गलत)
7. उत्तर संरचनावादी भाषा विज्ञान का प्रवर्तक जॉक देरिदा को माना जाता है। (सही / गलत)

8. अनुवाद केवल एक भाषा के पाठ को दूसरी भाषा में अंतरित कर देना है।(सही/गलत)
9. अनुवाद को अंग्रेजी में ..... कहा जाता है। (ट्रांसफर/ट्रांसलेशन)
10. अनुवादक के लिए आवश्यक है कि उन्हें दो भाषाओं के साथ दो ..... का भी ज्ञान हो। (संस्कृतियों/परिभाषाओं)

विषयनिष्ठ प्रश्न

1. अनुवाद की चुनौतियों से आपका क्या अभिप्राय है?
2. अनुवाद कर्म के दौरान आने वाली विभिन्न चुनौतियों के विषय में बताइए।
3. अनुवाद की भाषागत चुनौतियों की सोदाहरण चर्चा कीजिए।
4. अनुवाद की सामाजिक–सांस्कृतिक चुनौतियाँ क्या हैं?
5. अनुवादक अनुवाद की सामाजिक–सांस्कृतिक चुनौतियों का सामना किस प्रकार करते हैं?
6. 'कविता का अनुवाद एक असंभव कार्य है।' अनुवाद की चुनौतियों के संदर्भ में इस कथन की व्याख्या कीजिए।
7. भाषा के संरचनावादी तथा उत्तर सरंचनावादी दृष्टिकोण से आप क्या समझते हैं?
8. अभिव्यक्ति के स्तर पर अनुवाद की चुनौतियों की चर्चा कीजिए।
9. सूचनाप्रधान साहित्य के अनुवाद की विभिन्न चुनौतियों कौन–कौन सी हैं?
10. क्या सर्जनात्मक साहित्य का अनुवाद एक जटिल कार्य है? अपने विचार व्यक्त कीजिए।

3.7 उपयोगी पुस्तकें

1. गुप्ता, नीता (नीता गुप्ता), अनुवाद शतक विशेषांक 102–103, भारतीय अनुवाद परिषद, अंक जनवरी–जून 2000
2. तिवारी, भोलानाथ, अनुवाद विज्ञान : सिद्धांत एवं प्रविधि, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2011
3. Catford, J.C. (1965): A Linguistic Theory of Translation : An essay in Applied Linguistics, London, Oxford University Press
4. Baker, Mona and Saldanha, Gabriel (Ed.), 1998, Routledge Encyclopedia of Translation Studies, p. 301
5. http://www.signosemio.com/derrida/deconstruction-and-differance.asp, retrieved on 28 November 2019
6. Baker, Mona and Saldanha, Gabriel (Ed.), 1998, Routledge Encyclopedia of Translation Studies, p. 75
7. Bassnett & Lefevere, 1990: Translation, History and Culture,New York, Cassell, P. 11-12

8. Kuhiwczak, Piotr and Littau, Karin (ed.) (2007): A Companion to Translation Studies; p. 15
9. Brill, 1969, with C.R. Taber *;The Theory and Practice of Translation*
10. Benjamin, Walter (1923); The Task of the Translator
11. Venuti, Lawrence (1995)The Translator's Invisibility : A History of Translation,Routlege , London and New York, p.1-2
12. Venuti, Lawrence (1995)The Translator's Invisibility : A History of Translation,Routlege , London and New York, p.8
13. Kuhiwczak, Piotr and Littau, Karin (ed.) (2007): A Companion to Translation Studies; p. 94

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. सही
2. सही
3. नायडा
4. सही
5. गलत
6. सही
7. सही
8. गलत
9. ट्रांसलेशन
10. संस्कृतियों

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY